नैतिक शिक्षा के आलोक में अभिनवपंचतन्त्रम्

डॉ. डॉली जैन*

संस्कृत वाङ्मय में कथा साहित्य की प्राचीनतम एवं सुदीर्घ परम्परा रही है। ये कथाएँ सभी प्रकार की हैं– मानव जीवन की आख्यायिकाएँ, पशु पक्षियों की कहानियों के माध्यम से नीति शिक्षा देने वाली कथाएँ, जिन्हें अंग्रेजी में फेबल्स कहा जाता है, यात्रा कथाएँ, प्रतीक कथाएँ आदि–वेदकाल से ही संस्कृत में लिखी जाती रहीं है। पशु पक्षी विषयक ग्रन्थों में पंचतन्त्र सर्वप्रमुख है। इसके लेखक विष्णु शर्मा ने कहानियों के माध्यम से जीवनमूल्यों की शिक्षा देने के उद्देश्य से ही पंचतन्त्र की रचना की थी। इसी के आधार पर अन्य ग्रन्थ भी लिखे गए जिनमें ''अभिनवपंचतन्त्रम्'' भी एक है। यह प्रो. अभिराज राजेन्द्र मिश्र का सारस्वत उच्छ्वास है। कथाकार ने प्राचीन वक्ता एवं श्रोता के माध्यम से ही पंचतन्त्र को आगे बढ़ाया है, इसे इतिहास के गठ्ठर से निकाल कर वर्तमान समाज से जोड़ा है। इसकी कथाएँ रोचक हैं, प्रत्येक में कोई न कोई नैतिक शिक्षा है। नैतिक शिक्षा में उन सभी तथ्यों अथवा प्रश्नों का समावेश है, जिनका मानव जीवन के सच्चे स्वरूप और अन्तिम उद्देश्य अथवा लक्ष्य से सम्बन्ध है। ''अभिनवपंचतन्त्रम्'' में मानव के व्यवहार को मर्यादित करने के लिए अपेक्षित तत्त्वों का रोचक शैली में उल्लेख किया गया है।

मानव के लिए विद्या प्राप्ति को अत्यन्त आवश्यक कहा गया है क्योंकि निरन्तर विद्याभ्यास करते रहने पर तथा प्राचीन महापुरुषों की जीवनचर्या व उनके आचरण का अध्ययन करने से बुद्धि निर्मल हो जाती है।[1] विद्या प्राप्ति के लिए स्वाध्याय को आवश्यक कहा गया है।[2] विद्या को मनुष्य को सुसंस्कृत बना देने वाली कहा गया है।[3] इसी विद्या से मनुष्य की बुद्धि निर्मल होती है।

बुद्धि मनुष्य के लिए परम आवश्यक है। क्योंकि सब कुछ बुद्धि से ही प्राप्त होता है व बुद्धि के नाश से सब कुछ नष्ट हो जाता है।[4] इसलिए कल्याण भावना से संसक्त चित्तों द्वारा बुद्धि के ही सहारे सब कुछ सिद्ध करना चाहिए।[5] संकट काल में बुद्धि ही मित्र होती है।[6] मनुष्यों का खान–पान और रहन–सहन, निश्चित रूप से अलग–अलग क्षेत्रों में उत्तम–मध्यम होता रहता है परन्तु यह एक बुद्धि ही है जो सारे संसार में प्रायः समान रूप वाली होती है और मनुष्यों के संकटकाल में सहायक होती है।[7] सिर पर आई हुई विपत्ति यथोचितसद्बुद्धि बल को छोड़कर राक्षस, प्रेत, पिशाच, नाग, यक्ष और देवता द्वारा भी टाली नहीं जा सकती है।[8] बुद्धि के ही माध्यम से सारा असम्भव कार्य किया जा सकता है[9] और प्राप्त वस्तु की रक्षा बुद्धिबल से ही हो सकती है। बुद्धि के अभाव में तो लब्ध अर्थात् प्राप्त हुई भी वस्तु

***512, रामानुजन आवास, वनस्थली विद्यापीठ टोंक (राज.)**

का प्रणाश सर्वथा निश्चित है।[10] अतः बुद्धि का महत्व प्राणों से भी अधिक कहा गया है। प्राणों के अक्षत रहते हुए सत्पुरुषों की बुद्धि उन्हें छोड़कर नहीं जानी चाहिए।[11]

काम, क्रोध, लोभ व मद मनुष्य के शत्रु कहे गए हैं। अतः लेखक काम भावना को त्यागने का उपदेश देता है। इसके लिए वे अनेक दृष्टान्त देते हैं कि काम से ही बाली मारा गया, काम से ही रावण मारा गया। इन्द्रपद को पाकर भी काम के की कारण नहुष भी मारा गया। धीर पुरुष को काम को उसी प्रकार नियन्त्रित करना चाहिए जैसे यज्ञकुण्ड में आग सुरक्षित रखी जाती है अन्यथा अमर्यादित काम वनाग्नि की भाँति जीवन को दग्ध कर देता है।[12] इसी प्रकार मनुष्य यदि क्रोध में अन्धा हो जाता है तो न उसे अतीत का प्रेम, न ही भविष्य का भय दिखता है, उसे तो केवल वर्तमान का मनोयोग ही दिखाई पड़ता है।[13]

काम व क्रोध के समान लेखक वैर करने का भी विरोध करते हैं क्योंकि यह वैर जीवन को नष्ट कर देने वाला होता है।[14] वे कहते हैं कि साँप बिना कारण के डसता नहीं है, धरती भी अकारण चोट नहीं पहुँचाती, परन्तु बिना किसी कारण के ही जो वैर से युक्त जीवन जीता है, वह विधाता का रचा हुआ कोई विलक्षण ही प्राणी होता है।[15] अतः कवि उपदेश देते हैं कि अहि–नकुल अथवा काक–उलूक जैसा नैसर्गिक अथवा अकारण वैर नहीं पालना चाहिए, वैर वही अच्छा होता है जिसका कोई समुचित कारण व समाधान हो।[16] बलवान् के साथ लिया गया विरोध तो करुण अन्त वाला होता है।[17]

अतएव लेखक ने वैर के स्थान पर **मीठे बोल बोलने** का उपदेश दिया है क्योंकि मीठे बोल सबसे बड़ी औषधि होते हैं।[18]

परोपकार को पुण्य का मूल कहा जाता है। अतः परोपकार का उपदेश भी लेखक ने दिया है। वे कहते हैं कि उपकार, प्रेम तथा अच्छे व्यवहार से ही मित्र प्राप्त होते हैं और विश्वासघात, अपकार तथा ईर्ष्या द्वेष से ही टूट भी जाते हैं।[19] वे कहते हैं कि मालिकों के आपसी सुख से उपाश्रितों का भी सुख व आनन्द बढ़ जाता है।[20]

लेखक ने धैर्यपूर्वक सदसद् विवेक बुद्धि से कार्य करने का उपदेश दिया है क्योंकि क्षिप्रकारिता अनर्थ का मूल होती है। जल्दबाजी में लिया गया निर्णय अधिकांशतः हानिकारक होता है। लेखक कहते हैं कि बिना विचारे किया हुआ कार्य कल्याणकारी नहीं होता है[21] बल्कि अपना ही नाश करने वाला होता है।[22] अतः फल के अनुमान के साथ ही साथ जीवन में कोई कार्य करना चाहिए ऐसा करने से मानवृद्धि व यशोवृद्धि होगी।[23]

कवि ने लोक व्यवहार की भी शिक्षा दी है कि जहाँ बहुत अधिक प्रीति पाने की आकांक्षा हो वहाँ तीन काम सदा–सदा के लिए छोड़ देना चाहिए– आहार (खानपान), व्यवहार (पैसे का लेन–देन) तथा लुकछिप कर घर की औरतों की ताक–झाँक करना।[24] इसी प्रकार वे कहते हैं कि अरण्य की दावाग्नि, समुद्र की उत्ताल तरंग तथा पहुँचे हुए विद्वज्जन की मन्त्र शक्ति – इन तीनों की आत्मबल

सम्पन्न बुद्धिमान मनुष्य को स्वप्न में भी अवमानना नहीं करनी चाहिए।[25] इसी प्रकार वे कहते हैं कि पूर्वाग्रह से ग्रसित मन तथा बुद्धि वाले लोगों को वशीभूत करने की औषधि तो ईश्वर भी नहीं जानता है।[26] कवि ने धन का लोभ न करने का उपदेश दिया है क्योंकि धन का लोभ मानव को दानव बना देता है।[27]

लेखक ने मानव मात्र को मैत्री करने का उपदेश दिया है। मित्रता की परिभाषा करते हुए वे कहते हैं कि मीठा बोलने वाला, सीमित इच्छा वाला, मितव्ययी, मितभाषी, शत्रुजनों को संत्रस्त कर देने वाला, सलज्ज व्यवहार वाला व्यक्ति ही मित्र नाम से जाना जाता है।[28] मित्रत्व की योग्यता बताते हुए वे कहते हैं कि बिना प्रीति, जाति, भाव व गति के बिना जो मैत्री अकस्मात् हो जाती है, वह विनाश के लिए ही होती है।[29] इसलिए वे कहते हैं कि जल्दाबाजी में मित्रता न करनी चाहिए और न ही तोड़नी चाहिए। मित्रता तो वही अच्छी होती है जो मणि और काञ्चन के संयोग वाली मुद्रिका की तरह दो मित्रों से संवलित हो।[30] खलों के साथ की गई मित्रता दिन–प्रतिदिन बढ़ती तो केले के पौधे की तरह है, ओस की बूँदों के समान शोभित भी होती है, परन्तु यह समूलविनष्ट हो जाती है।[31]

मित्रता दो विरोधियों को भी जोड़ देती है।[32] मित्रता में खानदान व जाति की विशेषता नहीं देखी जाती और न ही धनी व द्ररिद्रता को देखा जाता है।[33] मित्रता केवल हृदय की समानता देखती है। मित्रता का तात्पर्य ही है दो हृदयों का साथ–साथ रहना, समान अनुभव वाला होना।[34] इसी कारण से मित्रता को सर्वोत्कृष्ट कहा गया है जो दो मानसों का परस्पर विलय कर देती है। क्योंकि पति–पत्नी भी अपने सुख के लिए एक दूसरे को प्रेम करते हैं पर मित्रता निःस्वार्थ भाव से की जाती है।[35] इसीलिए लेखक कहते हैं कि मतिमान मनुष्यों का इन्द्रिय प्रेरणा से समुत्पन्न विषय सुख का भोग युवतियों को प्राप्त कर भले ही कृतकृत्यता को प्राप्त हो जाए, परन्तु पृथ्वी पर उनका जन्म लेना तो स्वजनों में सर्वश्रेष्ठ, मंगलकारी एक मित्र के बिना, सार्थकता को नहीं ही प्राप्त होता।[36]

इस प्रकार लेखक ने मानव मात्र को नैतिकता की शिक्षा दी है। प्रस्तुत शोधपत्र का निष्कर्ष निम्न बिन्दुओं में देखा जा सकता है–

1. प्रस्तुत ग्रन्थ में उपलब्ध नैतिक शिक्षा आधुनिक संस्कृत साहित्यकारों के नैतिकता बोध को सूचित करती है।
2. पंचतन्त्र की रचना बालकों को राजनैतिक व नैतिक शिक्षा देने के उद्देश्य से की गई थी उसी के अनुसरण पर ''अभिनवपंचतन्त्रम्'' भी आधुनिक छात्रों को रोचक शैली में नैतिक शिक्षा प्रदान करने के उद्देश्य से लिखी गई है।
3. कवि द्वारा प्रदत्त नैतिक शिक्षा में सद्बुद्धि व मैत्री भाव के उद्धरण सर्वाधिक प्राप्त होते हैं, जो उचित भी है। सद्बुद्धि होने पर मनुष्य उचित–अनुचित का निर्णय कर सकता है फलतः समाज में घटित होने वाले गलत कार्यों में कभी लाई जा सकती है। मैत्री की भावना होने पर समाज में हिंसक घटनाओं की दर कम हो सकती है।

सन्दर्भ :–

1. मन्ये सततविद्याभ्यासेन प्राक्तनमहापुरुषजीवनचर्यानुशीलनेन च भूयोभूयो वृद्धिमुपयास्यति युष्माकं धिषणानटी।
   अभिनवपंचतन्त्रम्, अपरीक्षितकारकम्, पृ. सं. 79
2. अतएव स्वाध्यायो न कथमपि हातव्यः।
   अभिनवपंचतन्त्रम्, अपरीक्षितकारकम्, पृ. सं. 79
3. विद्याविनय शिक्षया च संस्कृत्य.....।
   अभिनवपंचतन्त्रम्, अपरीक्षितकारकम्, पृ. सं. 90
4. बुद्धयैव जीयते सर्वं सर्वं बुद्धयैव भुज्यते।
   बुद्धिनाशेऽखिलं नष्टं तस्माद् बुद्धिर्विशिष्यते।।
   अभिनवपंचतन्त्रम्, लब्धप्रणाश – 2
5. अतो हि कल्याण निषक्तचित्तैर्बुद्धयैव सर्वं खलु साधनीयम्।।
   अभिनवपंचतन्त्रम्, काकोलूकीयम् – 2
6. संकटे नो सखा बन्धुर्बुद्धिरेव सहायिनी।
   अभिनवपंचतन्त्रम्, लब्धप्रणाशः – 5
7. अशनशयनपानं निश्चितं मानवानां
   विविधजनपदेषूच्चावचत्वं प्रयाति।
   निखिलजगति किन्तु प्रायशस्तुल्यरूपा
   जनविपदि सहाया दृश्यते बुद्धिरेषा।।
   अभिनवपंचतन्त्रम्, लब्धप्रणाशः – 3
8. न रक्षसा प्रेतपिशाचपन्नगै
   र्न चाऽपि यक्षेन सुरेण वा विपत्।
   समागता शीर्षपदं निवार्यते
   विहाय सद्बुद्धिबलं यथोचितम्।।
   अभिनवपंचतन्त्रम्, मित्रभेद –2
9. बुद्धयैव शक्यते कर्तुं कार्यं सर्वमसम्भवम्।
   अभिनवपंचतन्त्रम्, अपरीक्षितकारकम् – 7
10. बुद्धयभावे तु लब्धप्रणाशः सर्वथा निश्चितः।
    अभिनवपंचतन्त्रम्, अपरीक्षितकारकम्, पृ. सं. 77
11. प्राणाः प्रयान्ति चेद्यान्तु तत्र का परिदेवना।
    प्राणेषु सत्सु मायातु किन्तु बुद्धिरियं सताम्।।
    अभिनवपंचतन्त्रम्, अपरीक्षितकारकम् – 6
12. स्मरेणोपहतो बाली स्मरेणैव च रावणः।
    ऐन्द्रं पदमवाप्याऽपि स्मरेण नहुषो हतः।
    कामं नियन्त्रयेद्धीरो यज्ञऽकुण्डेऽग्निसन्निभम्
    वनाग्निरिव कामोऽयं मुक्तो दहति जीवनम्।।

अभिनवपंचतन्त्रम्, मित्रभेद – 13, 14

13. क्रोधान्धो न नरः पश्येदतीतं प्रेम नो भयम्।
भावि, पश्येदसौ स्वीयं केवलं मनसो रयम्।।
अभिनवपंचतन्त्रम्, लब्धप्रणाशः – 10

14. मृतावकारणं हन्त वैरान्नकुलसर्पयोः।
जाXलिकनाकुलिकौ काकोलूकीयसंश्रितौ।।
अभिनवपंचतन्त्रम्, लब्धप्रणाश – 9

15. नाकारणं दंशमुपैति सर्पो
न चापि घातं वसुधा विघत्ते।
अकारणं वैरमुपेत्य जीवन्
विलक्षणो धातृकृतौ स कश्चित्।।
अभिनवपंचतन्त्रम्, काकोलूकीयम् – 7

16. अहिनकुलोचितं काकोलूकोचितं वा नैसर्गिकमकारणं वा वैरं नैव पालनीयम्। वैरं तदेव वरं भवति यस्य समुचितं कारणं भवेत् समाधानमपि।
अभिनवपंचतन्त्रम्, लब्धप्रणाशः, पृ. सं. 63

17. बलवद् विरोधिता दुरन्तैव भवति।
अभिवनपंचतन्त्रम्, काकोलूकीयम्, पृ. सं. 59

18. सुलभविपदां प्राणिनां सान्त्ववचनमेव परमौषधम्।
अभिनवपंचतन्त्रम्, काकोलूकीयम्, पृ. सं. 54

19. उपकारेण प्रेम्णा सद्व्यवहारेणैव मित्राणि प्राप्यन्ते, विश्वासघातेनाऽपकारेण द्वेषकरणेन च प्रलीयन्ते।
अभिनवपंचतन्त्रम्, मित्रसम्प्राप्ति, पृ. सं. 17

20. विवर्धते सौख्यमुपाश्रितानां सुखेन निश्चप्रचमाश्रयाणाम्।
प्रवातझञ्झादिविपन्नवृक्षः कथं क्षमेतातपवारणाय।।
अभिनवपंचतन्त्रम्, अपरीक्षितकारकम् – 3

21. न श्रेयसे भवत्येव अपरीक्षितकारकम्।
अभिनवपंचतन्त्रम्, अपरीक्षितकारकम् – 4

22. (i) अपरीक्ष्यं कृतं कार्यं भवत्यात्मविनाशकम्।
अभिनवपंचतन्त्रम्, अपरीक्षितकारकम् – 1
(ii) अपरीक्ष्यं फलं यो वै कुरुते कार्यमुन्मदः।
प्राप्य राज्यपदञ्चापि नाशमेति यथोरूकः।।
अभिनवपंचतन्त्रम्, अपरीक्षितकारकम् – 6

23. फलानुमितिपूर्वकमेव किञ्चित्कार्यं युष्माभिरपि स्वजीवने करणीयम्। एवं कुर्वतां युष्माकं नितरां मानयशोवृद्धिर्भविष्यति।
अभिनवपंचतन्त्रम्, अपरीक्षितकारकम्, पृ. सं. 92

24. यत्रेच्छेत् विपुलां प्रीतिं तत्र त्रीणि वर्जयेत्।
आहारं व्यवहारञ्च परोक्षे दारदर्शनम्।।
अभिनवपंचतन्त्रम्, मित्रभेदः – 1

25. अरण्यदावाग्निरुदन्वदम्भः प्रविज्ञविद्वज्जनमंत्रशक्तिः।
एतत् त्रयं बुद्धिमता जनेन स्वप्नेऽपि नैवात्मवताऽवमन्यम्।।
अभिनवपंचतन्त्रम्, अपरीक्षितकारकम् – 5

26. पूर्वग्रहग्रथिलचित्तधियां जनानां
जानाति नैव विनयौषधिमीश्वरोऽपि।।
अभिनवपंचतन्त्रम्, काकोलूकीयम – 3

27. धनलिप्सा मानवं दानवं विवधातीति।
अभिनवपंचतन्त्रम्, मित्रभेदः, पृ. सं. 39

28. मिष्टभाषी मिताकांक्षी मितव्ययो मिताक्षरः।
त्रस्तशत्रुस्त्रपाशीलो मित्रसंज्ञोऽभिधीयते।।
अभिनवपंचतन्त्रम्, मित्रसम्प्राप्तिः – 1

29. विनाप्रीतिं विना जातिं विना भावं विना गतिम्।
अकस्माज्जायते यद्धि तद्विनाशाय सौहृदम्।।
अभिनवपंचतन्त्रम्, मित्रसम्प्राप्तिः – 3

30. द्राङ् न मैत्री विधातव्या भञ्जनीया न वा तथा।
मणिकाञ्चनसंयोगा मुद्रिकैव हि शोभते।।
अभिनवपंचतन्त्रम्, मित्रसम्प्राप्तिः – 6

31. अनुदिनं कदलीव विवर्धते
तुहिनविन्दुततीव च शोभते।
परिणतिं समुपेत्य विनश्यति
ननु समूलमियं खलमित्रता।।
अभिनवपंचतन्त्रम्, मित्रसम्प्राप्तिः – 4

32. स्याज्जनः शाकविकेता श्रेष्ठिपुत्रोऽथवा धनी।
विरुद्धावपि बध्नाति जनावेकं नु सौहृदम्।।
अभिनवपंचतन्त्रम्, मित्रसम्प्राप्तिः – 9

33. मित्रतायां नापेक्ष्यते कुलजातिवशेषः। नेक्ष्यते धनिकत्वं द्वारिद्रयं वा।
अभिनवपंचतन्त्रम्, मित्रसम्प्राप्तिः – 22

34. सौहृदं पश्यति केवलं सहृदयत्वम्। सौहृदं नाम द्वयोर्हृदययोः सहावस्थानं तुल्यसंवेदनम्।
अभिनवपंचतन्त्रम्ः, मित्रसम्प्राप्तिः, पृ. सं. 24

35. पतिमुपचरेद्भार्यामन्ये शरीरसुखाय सा पतिरपि भजेद्भार्यां तद्वत्स्मरोत्सवपूर्तये।
भुवि बहुमताः सर्वे स्वार्थप्रपूर्तिदिशैव भोस्तदपि जयते मैत्री सैका मनोलयकारिणी।।
अभिनवपंचतन्त्रम्, मित्रसम्प्राप्तिः – 11

36. हृषीकेच्छाजातो विषयसुखभोगो युवतिषु
लभेतालं तोषं तदपि जनिभाषां मतिमताम्।
न सार्थक्यं लोके प्रभवतितरां जन्मनिलयं
विना मित्रं ह्येकं स्वजनचरमं मंगलकरम्।।
अभिनवपंचतन्त्रम्, मित्रसम्प्राप्तिः – 10